



आदिवासी से अनुसूचित जनजाति के राजमार्ग पर चलते हुए

रामनाथ शिवेन्द्र

आदिवासी कभी आदिवासी थे आज आदिवासी नहीं हैं, आज वे अनुसूचित जनजाति हैं, उनकी जाति व संस्कृति का पहले कानूनी करण किया गया अब राजनीतिकरण किया जा रहा है, आदिवासियों ही नहीं दलितों के साथ भी यह कानूनी ड्रामा हम लगातार लोकतंत्र के अभिनव मंच पर देख रहे हैं मजा यह कि यह ड्रामा कथित बौद्धिकों को आकर्षित ही नहीं प्रभावित भी कर रहा है, आप थोड़ा समय निकाल कर आदिवासी क्षेत्रों को देख लीजिए कि आदिवासी से अनुसूचित जनजाति के राजमार्ग पर चल रहे हैं, रेंग रहे हैं या औंधे पड़े हुए हैं, भहराए हुए अनाथ, हताश, तथा पेट की आग में जलते हुए।

हमारे अतीत की नियति ही ऐसी थी कि आदिवासी या तो खुद को कथित सभ्यों की संस्कृति में विलीन कर दें या मिट जाएं, हमें नहीं भूलना चाहिए आर्यों के कारनामों को, सभ्य होने के गर्व में आर्यों ने भारत के मूल निवासियों को जिन्हें आदिवासी ही कहना चाहिए उनके ही घरों व परिक्षेत्रों से कितनी बेहयाई से बेदखल किया था। यह भारत के अतीत का घृणित सत्ता कौतुक है किसी दर्दनाक शोक काव्य की तरह आज के समय का सत्ता कौतुक तो जो थोड़ी बहुत बची खुची आदिवासियत है उसे भी लीलने तथा हजम करने के लिए आतुर है। किसे नहीं मालूम कि दुनिया में किसी भी मानव समूह में अगर मानवीय समीपता की आकांक्षाएं सुरक्षित हैं तो वे आदिवासी समाज तथा समूह में ही। आदिवासियों के पास आज भी मानवीय समीपता के सारे प्राकृतिक तत्त्व जस के तस सुरक्षित तथा आरक्षित है, स्त्री, पुरुष संबंधों की बात हो, भाईचारे, सहभागिता आदि की बात हो, प्रकृति की मादकता में डूब जाने या जंगल के मनोरमों में आत्म को विलीन कर देने की बात हो, जड़ी, बूटी के द्वारा रोगों से लड़ने की लोक विद्या का ज्ञान हो, आज भी ये सारे मानवीय गुण आदिवासी समूहों में देखे जा सकते हैं भले ही वे गरीब हैं, बेरोजगार हैं, असहाय हैं तथा उन्हें असभ्य भी कहा जा रहा हो।

आज स्थितियां बदल चुकी हैं, अब वे केवल बहस के विषय हैं, जब से औद्योगिक विकास की जनद्रोही ताकतों का बोल बाला बढ़ा है तथा सेज आदि के नाम पर भूमि अधिग्रहण कानूनों का क्रूरतम प्रयोग प्रारंभ हुआ है, उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण व्यक्ति वस्तु में परिवर्तित हो गया है तब से किसान तथा आदिवासी जो हासिए पर फेंक दिए गये थे चर्चा परिचर्चा के विषय बन गये हैं। इसलिए नहीं कि उनका हित करना है इसलिए कि उन्हें और प्रताड़ित करना है। कम से कम भारत में हम ऐसा ही देख रहे हैं कि आदिवासियों एवं किसानों के नाम पर लगातार घड़ियाली आंसू बहाए जा रहे हैं, आजादी के बाद से ले कर आज तक शायद ही कोई ऐसा सत्ता समूह रहा हो जिसने आंसू न बहाए हों, देखा देखी बौद्धिकों ने भी रोना शुरू कर दिया है हालांकि

मैं इसका निन्दक नहीं हूँ, मैं मानता हूँ कि आंसू बहाए जाने चाहिए कम से कम साहित्य से जुड़े लोगों को तो खासतौर से आदिवासियों के दुखों, यातनाओं, प्रताड़नाओं, विस्थापनों को अपने चिंतन मनन का विषय बनाना ही चाहिए, खुशी है कि लोग अब ऐसा करने भी लगे हैं फलस्वरूप किसान तथा आदिवासियों के जनान्दोलन अब विमर्श का रूप भी लेने लगे हैं, पर अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है, मैं नहीं जानता कि आदिवासी विमर्श ने कविता संकलनों, उपन्यासों जैसी साहित्यिक विधाओं में अपना उचित स्थान पाया है, लोग इस विमर्श को दूसरी धारा की ओर लगातार मोड़ते, तोड़ते जा रहे हैं।

कहा जाता है कि आदिवासी खुद को बदलना ही नहीं चाहता, वह जड़ होता है, वह संघर्षकारी एवं हस्तक्षेपकारी जन अभियानों की भागीदारी नहीं कर सकता। ऐसे विचारक अगर जानना चाहें तो आजादी के पहले के समय में उतर कर जान सकते हैं कि जिन आदिवासियों को निरीह, विवश, हारा हुआ, अपने में गोता लगाने वाला असभ्य माना व जाना जाता रहा है उन आदिवासियों ने अपनी संस्कृति व सभ्यता बचाने के लिए जिस तरह के जनसंघर्षों को आयोजित किया वे आज इतिहास की धरोहर हैं। कोल विद्रोह, पहड़िया आन्दोलन, विरसा मुन्डा का आन्दोलन, संधाल व खरवार आन्दोलन आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो सत्ता धारी वर्ग के निरंकुश अतीत को हिला कर रख देते हैं तथा चुनौती देते हैं क्या ऐसे आन्दोलन आदिवासियों के इतर कथित सभ्य जातियों द्वारा किए गये? सत्ता प्रमुख तो सत्ता प्रमुख होता है, कानूनों, विधानों, अधिनियमों के आंचल में मुंह छिपा कर शासन करने वाला। उन्हें आदिवासी संस्कृति की जनहस्तक्षेपकारी भूमिका को नष्ट करने के लिए नये किस्म की धोखापूर्ण रणनीति खोजनी ही थी, उन्होंने ऐसा किया भी। हमारे सोनभद्र में ही जूरा तथा बुद्धू भगत ने वारेनहेस्टिंग्स को हिला कर रख दिया था, ये दोनों भुइयां आदिवासी समूह के प्रतिनिधि लोग थे। राजा बनारस चेत सिंह को विजय गढ़ तथा अगोरी रियासतों से वारेन हेस्टिंग्स बेदखल करना चाहता था। उस समय जूरा तथा बुद्धू भगत ने चेत सिंह का पक्ष लिया तथा तीर धनुष के साथ अंग्रेजों का मुकाबिला किया यह अलग बात है कि वारेन हेस्टिंग्स यहां काबिज हो गया पर इन दोनों आदिवासियों के उस प्रतिरोधी संघर्ष को नहीं भूला जा सकता। इन दोनों आदिवासियों ने यह प्रमाणित कर दिया था कि चेत सिंह चाहे जो हों फिर भी अपने हैं पर अंग्रेज अपने नहीं हो सकते, विवश हो कर अंग्रेजों को उनसे सम्मान जनक समझौता करना पड़ा था। मजा यह कि जूरा तथा बुद्धू भगत दोनों किसी विश्वविद्यालय के उत्पाद नहीं थे वे लोक विद्या के उत्पाद थे जिससे अपना तथा पराया की पहचान की शक्ति मिलती है, विश्वविद्यालयों के उत्पाद वाले लोग तो अंग्रेजों के साथ थे।

आदिवासियों के दमन का सिल-सिला पन्द्रहवीं शताब्दी से आज तक लगातार चल रहा है। आदिवासी संस्कृति तथा उनकी भौमिक अधिकारिता नष्ट करने के लिए सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, व सैनिक तौर तरीकों से जो हमले किए जा रहे हैं उन्हें हर ओर देखा जा सकता है। आदिवासी हैं कि आदिवासी से जनजाति तक के राजमार्ग पर चलते हुए आज भी बचे हुए हैं। वे करमा गा रहे हैं, दारु चुआ रहे हैं, कन्द मूल की खोज में दिन भर जंगल छान रहे हैं, नर नारी के मधुर तथा पवित्र संबंधों को बचाए हुए हैं, पत्नी जो उसके लिए सर्वगुण संपन्न नारी है उसके साथ पीछे पीछे चल रही है, आपस की पटरी में रंच मात्र दरार आने तथा संबंधों की सात्त्विक मर्यादा में कमी आने पर वह साफ साफ बोलने में सभ्यों की तरह संकोच नहीं करती 'तू अपना देख' तू इस लायक नहीं कि हम तोहरे साथे रहें' और वह बिना धोखा दिए कहीं दूसरी जगह सलट लेती है अगर नहीं भी सलटती तो वह अपने पति या साथी चयन का अधिकार किसी को सौंपती भी नहीं, क्या नर नारी के इतने साफ तथा खुले रिश्ते किसी भी समाज में हैं? चाहे मामला साथी चयन का हो, मित्रों के चयन का हो, काम करने का हो, गीत गाने बजाने, नाचने का हो, हर मोड़ पर आदिवासी स्त्री पुरुष, प्रेमी, प्रेमिका, अलग अलग रूपों में नहीं दिखते, नर नारी के सात्त्विक रिश्तों का आन्तरिक विलयन अगर देखना हो तो कम से कम एक रात उनके साथ रह कर गुजरें फिर देखें वहां क्या है? किस तरह उनके बीच प्रकृति खुद आकर थिरक रही है, पूरा जंगल गुन गुना रहा है। यह है लोक विद्या का प्रतिफल जो आदिवासियों को दूसरे ज्ञानार्थियों से अलग करता है।

फिर कहना पड़ रहा है कि आज का आदिवासी है ही नहीं उसका कानूनी-करण हो गया है और वह अब जनजाति बनाया जा चुका है। आज हम उनमें छद्म जनजातीयता की पहचान कर सकते हैं। इसे जानने के लिए अतीत की ओर लौटना होगा जब आदिवासियों का सांस्कृतिक व धार्मिक रूपांतरण किया जा रहा था। आदिवासियों का हिन्दूकरण हमारे अतीत का जाना हुआ सच है, भक्ति, पूजा पाठ आराधना आदि के आकर्षक माध्यमों से आदिवासी कबीलाई समूहों को हिन्दू धर्म से संस्कारित करने के सांगठनिक प्रयास काफी सफल रहे हैं, मुगलिया काल में सूफी संतों ने भी उन्हें इस्लाम की तरफ मोड़ने तथा आदिवासियत छोड़ने के लिए प्रेरित किया तथा अंग्रेजी काल में ईसाई पादरियों ने भी वही किया जैसा कि दूसरे धर्मावलम्बियों ने किया, गोया उनके ऊपर लगातार सांस्कृतिक व धार्मिक बदलाव के हमले दर हमले किए जाते रहे हैं। कभी ताकत के बल पर तो कभी प्रलोभनों के बल पर। यहां यह कहना आवश्यक होगा कि आदिवासियों ने खुद भी संस्कृति के बदले हुए रूपों के स्वीकार में अपनी सहमति भी प्रदर्शित की खासतौर से आदिवासी कबीलों के सरदारों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के कारण भी ऐसा संभव हुआ। कबीलों के सरदारों के

सांस्कृतिक व राजनीतिक बदलावों के आत्मसातीकरण एवं सत्ता में बने रहने की आकांक्षाओं के कारण अन्य आदिवासी समूहों ने भी सत्ता समूह के हसीन रंगों में ढलने का विकल्प स्वीकार किया। ऐसी परिस्थिति में यह अनुमान करना कठिन नहीं होगा कि कितने आदिवासी बच गये होंगे जिन्होंने सांस्कृतिक व राजनीतिक बदलावों को स्वीकार नहीं किया होगा या विरोध किया होगा। इस संदर्भ में भारतीय इतिहास हमें यही सीख देता है कि आर्यों ने भारत के मूल निवासियों को मैदानी तथा उर्वर क्षेत्रों से खदेड़ कर जंगलों की ओर भगा दिया जिसे मैं ऐतिहासिक विस्थापन कहता हूँ तथा आदिवासियों के उस गीत को नहीं भूल पाता हूँ जिसे वे अक्सर गाया करते हैं....

अइसन जनम जग छोड़ि के पहाड़े डेरा हो

के सोए लाल पलंग पर के सोए भुइयां

के सोए कोने में कोदो पुअरा जेठाय के

राजा सोए लाल पलंग पर परजा सोए भुइयां....अइसन जनम जग छोड़ि के पहाड़े डेरा हो.....

सोनभद्र का संदर्भ लें तो यहां का अतीत बहुत ही महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तनों के कारण हुए आदिवासियत के निर्मूलीकरण का हवाला देता है पहला है आदिवासी खरवार राजा मदन शाह के साथ चन्देलों द्वारा दिए गये धोखे का। ये वही चन्देल थे पारी मल और बारी मल जो आर्य संस्कृति में दीक्षित थे, मदन शाह के यहां गुजारे के लिए नौकरी कर रहे थे बाद में वे छल छद्म करके अगोरी, बड़हर रियासत के स्वयंभू राजा बन जाते हैं, यह सब होता है बारहवीं शताब्दी के आस पास तब से किसी न किसी प्रकार से आर्य संस्कृति के लोग ही दोनों रियासतों के राजा बनते आ रहे हैं। अपनी कुटिल संस्कृति का संदर्भ देते हुए पारी मल तथा बारी मल दोनों अगोरी के तत्कालीन राजा मदन शाह को मरता हुआ देखते रहे, वह बीमार था तथा बेवश था। वह बार बार कह रहा था कि उत्तराधिकारी को बुलाया जाए पर उसके उत्तराधिकारी को पारी मल तथा बारी मल ने अन्त तक नहीं बुलाया। राजा कराह कराह कर मर गया। उसका उत्तराधिकारी युद्ध में हिस्सा लेने के लिए कहीं बाहर गया हुआ था। मरते समय राजा ने पारी मल तथा बारी मल को विश्वास पात्र समझ कर रियासत के खजाने की चाबी सौंप दिया कि वे उसके निधन के बाद उसके उत्तराधिकारी को सौंप देंगे, पर वे चाबी काहे सौंपते खुद राजा बन गये और आदिवासी सामन्तों तथा जनता का दमन करने लगे, तथा उन लोगों की खोज खोज कर हत्या कर दिए जो उस समय मदन शाह के करीबी थे। (गजेटियर मीरजापुर 1911 पृ.206-207) चन्देलों के डर के कारण कई आदिवासी कबीलों के प्रमुखों ने भी अपनी संस्कृति व सभ्यता छोड़ कर चन्देलों की

हिन्दू संस्कृति, धर्म आदि को स्वीकार कर लिया जिनमें प्रमुख रूप से भुइयां सरदार थे तथा कुछ कोल व धांगर भी। उनकी पीढ़ियां आज पूरी तरह से रूपांतरित हैं उनमें आदिवासी संस्कृति का नामोनिशान तक नहीं. कहा जा सकता है कि पारी मल तथा बारी मल का समय सोनभद्र के आदिवासियों तथा उनकी संस्कृति के निर्मूलीकरण का समय था।

आदिवासियत निर्मूलीकरण का दूसरा दौर अंग्रेजी काल में आता है। अंग्रेज भूमि प्रबंधन के कानूनों के जरिए सोनभद्र के आदिवासियों को न केवल भूमिहीन बनाते हैं वरन् उनके प्राकृतिक गुणों को समाप्त कर आदिवासियों का वन जो उनका जीवन है, लेते हैं। किसे नहीं मालूम कि आदिवासियों का जीवन ही वन है या वन ही उनका जीवन है। यहां यह बताना अप्रासंगिक नहीं होगा कि आज का सोनभद्र पहले मीरजापुर का एक भाग था, मीरजापुर 1830 में जनपद का दर्जा पाता है और आगरा टिनेन्सी ऐक्ट अंग्रेज 1926 में पारित करते हैं तथा 1939 आते उ.प्र. टिनेन्सी ऐक्ट भी पारित कर देते हैं, आदिवासी बहुल सोनभद्र के दक्षिणांचल यानि दुखी तथा अगोरी को मिला कर एक अलग राज्य जिसे दुखी क्राउन इस्टेट का नाम दिया गया कायम कर देते हैं। क्राउन इस्टेट का मतलब इंग्लैन्ड की महारानी का राज्य, वहां जाकर तत्कालीन कलक्टर राजा बन जाया करता था छत्र, चंवर धारी। हमारे सोनभद्र के आदिवासियों की निर्मम गाथा उपरोक्त कानूनों के जरिए निकलती है जो उन्हें बेघर तथा बिना खेती बारी के बनाती है, तथा जंगल क्षेत्रों से विस्थापित भी करती है। भूमि अधिकारिता को अंग्रेज मौरुसी तथा कानूनी अधिकार (Statutory Tenant) की श्रेणी में रखते थे, जाहिर है आदिवासी मौरुसी जोतदार थे तथा उन्हें उनकी खानदानी तथा पारंपरिक जोत के आधार पर भूमि अधिकार मिलने चाहिए थे पर ऐसा नहीं किया गया पूरे दक्षिणांचल को आगरा टिनेन्सी में डाल कर भूमि अधिकारिता के लिए स्टेट्यूटरी प्राविधानों को लागू कर दिया गया जिसका अर्थ था कि सरकारी ग्रांट अगर हों तो भूमि अधिकार मिलेगा नहीं तो नहीं, आदिवासियों के पास सरकारी ग्रांट कैसे होते, यह तो अंग्रेजों को भी मालूम था। फिर यह पूरा परिक्षेत्र उस दौर में अमापित (unsurveyed) था, जमीन के मालिकाने भी अलिखित थे, कब्जे के आधार पर जोत थी। रिकार्ड आफ राइट्स थे ही नहीं, ऐसी स्थिति में गवर्नमेन्ट ग्रांट आदिवासियों के पास कैसे होते? आदिवासी हितों का नाश करने वाले उन्हीं अंग्रेजी कानूनों को जमीनदारी विनाश अधिनियम का भी आधार बनाया गया फलस्वरूप आदिवासियों की जोतों की भूमि उनके अधिकारों से छीन ली गई तथा उसे राज्य सरकार या ग्राम सभा में निहित कर लिया गया। आदिवासियों को दूसरी भूमि कौन कहे जोत वाली भूमि भी नहीं हासिल हो सकी। सारी जमीनें जो आदिवासियों को मिलनी चाहिए थी उन पर राज्य या ग्राम सभा का अधिकार हो गया।

ऐसा अचानक नहीं किया गया था। ऐसा जान बूझ कर तथा नियोजित ढंग से किया गया था, जमीनदारी विनाश अधिनियम का सहारा लेकर जमींदारी विनाश करने के नाम पर आदिवासी हितों के विनाश का काम किया गया, 1971 आते आते एक बारगी सोनभद्र के राज्य सरकार तथा ग्राम सभा की जमीनों को वन प्रबंधन के तहत दे दिया गया (देखें माहेश्वर प्रसाद कमेटी की रिपोर्ट व मेरी किताब समय समाज और हस्तक्षेप पृ.21-30) कल्पना किया जा सकता है कि अगर ग्राम सभा की जमीनें वन प्रबंधन को नहीं सौंपी गई होती तो आज वे जमीनें, दलितों, पिछड़ों व आदिवासियों के नाम कानूनी रूप से आवंटित होतीं, उन पर फसलें लहरा रही होतीं जबकि आज तक वन प्रबंधन उस राजस्व भूमि पर एक पौधा तक नहीं लगा पाया है। जमीन वन विभाग को जिस हालत में मिली थी आज भी उसी तरह है अगर इस भूमि को आदिवासियों तथा दलितों में खेती के लिए आवंटित कर दिया जाए तो सोनभद्र की कृषि उत्पादों की पैदावार में कम से कम बीस प्रतिशत की बढ़ोत्तरी संभव है।

यह सच है कि आदिवासी तथा जंगल दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, दोनों एक दूसरे से अपने अपने जीवन जीने की ऊर्जा हासिल करते हैं, इसलिए वनों के वानिकीकरण तथा फैलाव को आदिवासी द्रोही नहीं माना जा सकता पर तब जब जंगल का फैलाव हो, वानिकीकरण हो, ऐसा कुछ भी सोनभद्र में नहीं हुआ। जंगल के फैलाव के नाम पर यहां आदिवासियों की बची खुची जमीनें वन अधिनियम की धारा 4 तथा 20 लगा कर अधिग्रहीत कर ली गई तथा उन जमीनों पर बड़े बड़े कारखाने खड़े कर दिए गये, या कारखानों को रियायती शर्तों पर सौंप दिया गया, आज के समय में उन कारखानों की भौमिक संपदा किसी जमींदार से कम नहीं। ये कारखाने आज सोनभद्र के बड़े जमीनदारों में हैं वन विभाग तो यहां का आला जमींदार है ही। ऐसा सब लोकतंत्रित प्राविधानों के तहत किया गया अभिनव किस्म का विस्थापन है जिसके शिकार हुए हैं यहां के मूलनिवासी। अभी हमारी सभ्यता को नहीं पता कि प्राकृतिक उपहारों, साधनों, संसाधनों का कारखानों के वैयक्तिक अधिकारों के द्वारा दोहन अमानवीय ही नहीं पूरी मानव जाति के प्रति किया जाने वाला अपराध है क्योंकि जल, जमीन, जंगल, नदी, पहाड़ प्रकृति के उपहार हैं जिस पर किसी का वैयक्तिक मालिकाना हो ही नहीं सकता। कुछ आदिवासी, दलित तथा पिछड़ों को कारखानों में रोजगार मिला है जिसका प्रतिशत काफी घृणित है यानि नाम मात्र है। अगर कोई यह बात करे कि हमें उस मात्रा में रोजगार दो जिस मात्रा में हमारे क्षेत्र की प्राकृतिक संपदा का दोहन कर रहे हो तो यह राष्ट्रद्रोह हो जाएगा।

यह सर्व स्वीकार सत्य है कि अरण्यक संस्कृति तथा नागर संस्कृति के द्वन्द ने पूरी सभ्यता को खानों में विभाजित किया है, शोषक व शोषित के निर्मम खाने आज भी जस के तस हैं। जाने कब तक रहेंगे इस बाबत भविष्य वाणी भी नहीं की जा सकती। कृषि सभ्यता वाला समाज या यूं

कहें सबै भूमि गोपाल वाला समाज, या हल की जोत वाले समाज (राजाओं के जमाने में हर बालिग व्यक्ति को एक हल की खेती की सीमा तक की जमीन खेती बारी करने के लिए मिल जाया करती थी) देखते देखते सामंती समाज में रूपांतरित हो गया तथा इतिहास को पता तक नहीं चला कि हमारे मुखिया कब और कैसे सामंत बन गये। सामंत बनते ही उस वर्ग ने सत्ता के करतबों को दिखाना शुरू किया, उसे करतब दिखाना ही था। मानव समीपता खंड खंड हो-कर टूटने व बिखरने लगी, भाई चारे की संस्कृति खत्म हो गई, एकला चलो, तथा एकला बढ़ो ने जोर पकड़ लिया, कौन राजा बने, कौन सामंत बने? के लिए हमलों, प्रति हमलों का दौर शुरू हो गया जिसे शुरू होना ही था भारतीय मन की आध्यात्मिक पवित्रता कराहने लगी, यहीं से राज्य तथा व्यक्ति के द्वन्द के रूप में जिसकी लाठी उसकी भैंस की एक निर्मम व समाज द्रोही संस्कृति को सम्मान मिलना प्रारंभ हो गया, जिसे सामंत कहें, राजा कहें, अधिकारी कहें या जन प्रतिनिधि ही। इस तरह एक शक्तिशाली सत्ता समाज अस्तित्व में आया जो आज भी लगभग उसी रूप में हर तरफ फन फैलाए हुए है भले लोकतंत्र का जाप कर रहा हो पर है वही पहले वाला ही। व्यक्ति सत्ता पर इस तरह हावी हो गया कि समाज हांसिए पर चले जाने के लिए अभिशप्त हो गया जिसे हम आज भी देख रहे हैं, कहने को तो लोकतंत्र है पर कहीं भी इसमें लोक नहीं दिख रहा।

आंकड़ों की बात करें तो अचरज होता है कि सोनभद्र आदिवासी बहुल होते हुए भी यहां अनुसूचित जनजातियों की संख्या कुछ सैकड़ों में ही मानी जाती है यहां के तमाम आदिवासी जाति समूहों को अनुसूचित जाति के खानों में डाल दिया गया है। यह आजादी के बाद वाली प्रान्तीय सरकार की बहुत ही वीथत्स चाल थी जिससे कि सोनभद्र के आदिवासियों को संविधान की अनुसूची पांच का लाभ न मिल सके, वही हुआ भी, यहां के कोल आज भी अनुसूचित जाति के खाने में हैं, गोड़ों को अनुसूचित जन जाति मान तो लिया गया है पर उन्हें वह रियायतें आज भी हासिल नहीं हो सकी हैं जिनके वे हकदार हैं। दुद्धी तहसील के तमाम गांव जो अनुसूचित जनजाति बहुल हैं वहां ग्राम पंचायतों में अनुसूचित जन जाति के लिए एक भी सीट आरक्षित नहीं है। अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व न केवल पंचायती चुनावों से वरन् संसदीय व विधान सभा से भी वंचित है, कम से कम दुद्धी को तो अनुसूचित जनजाति वाला क्षेत्र मान ही लेना चाहिए तथा अनुसूचित जनजातियों को उनकी संख्या के अनुसार जन प्रतिनिधित्व प्रदान करने के बारे में सोचना चाहिए।

विडंबना है कि आदिवासी जो अब अनुसूचित जनजाति में विधिक रूप से रूपांतरित हो चुका है वह सोनभद्र में रहते हुए क्या करे वह उन रियायतों को कैसे हासिल करे जिसे देने के लिए सरकारें अपनी

प्रतिबद्धतायें दिखा रही हैं, आज तो यह पूरा परिक्षेत्र अनुसूचित जाति के नाम से ही चल रहा है इसी आधार पर यहां का एक मात्र संसदीय सीट अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित भी है, पिछले चुनावों में दुखी तथा रावर्ट्सगंज की विधान सभा की सीटें भी अनुसूचित जाति के खाते में थी, कुल मिला कर यहां एक भी सीट ऐसी नहीं जो अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित हो। समझा जा सकता है कि यह जो आदिवासियों का हाल के वर्षों में विधिक रूप से अनुसूचित जनजाति करण हुआ है उससे आदिवासियों को क्या मिला, वे तो किसी काम लायक ही नहीं रह गये। विधिक रूप से वे आज के समय में चुनावों में भागीदारी करने के अधिकार से भी वंचित कर दिए गये हैं।

सोनभद्र के आदिवासियों के साथ जो कानूनी खेल खेला गया है वह न्याय शास्त्र के कौतुकों की लोकप्रियता पर सवाल खड़ा करता है, अगर ऐसा नहीं हुआ होता तो सोनभद्र आज आदिवासी जोन के रूप में जाना जाता जिसे अनुसूची पांच के तहत संविधान ने प्रदत्त किया हुआ है क्योंकि यह परिक्षेत्र संविधान के उन सारे उपबंधों को पूरा करता है जो अनुसूचित जनजाति जोन बनाए जाने के लिए आवश्यक हैं फिर तो सोनभद्र के आदिवासियों की हर संभव सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक स्वायत्तता बची रह जाती जैसा कि देश के कुछ हिस्सों में आज भी देखा जा रहा है जहां संविधान की अनुसूची पांच का उपयोग किया गया है। सोनभद्र के आदिवासी अनुसूची पांच के लाभों से वंचित हो जाएं ऐसा करने के लिए उन्हें आदिवासी माना ही नहीं गया अनुसूचित जनजाति मानने का तो सवाल ही नहीं था, उनकी आबादी की गणना गलत तरीके से की गई, उन्हें अनुसूचित जाति के खाने में रख दिया गया जिससे कि इस परिक्षेत्र को संविधान की अनुसूची पांच के खाते में जाने से रोक दिया जाए। वही हुआ भी आज यहां का आदिवासी अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में कौन कहे अनुसूचित जाति के खाने में भी नहीं रह गया है।

बावजूद इसके सोनभद्र के आदिवासी आज भी करमा की धुनों पर थिरक रहे हैं, सोनभद्र में अगर आपको प्रकृति का नृत्य, संगीत देखना है तो यहां के आदिवासियों के साथ समय गुजारना होगा। उनके साथ रहते हुए ही आप जंगल का लहराना, पेड़ों का मुस्कराना, पत्तियों का मनोरम नाद संगीत व कला सुन व देख सकेंगे जबकि उनके पास अब खोने के लिए, तथा खाने के लिए कुछ भी नहीं है, वे विस्थापित हैं, बेरोजगार हैं, भूखे हैं पर जीवन जीने के प्रति आश्वस्त तथा मस्त है। वे एक ऐसे मानव समूह के लोग हैं जिन्हें भूत भविष्य दोनों भयभीत नहीं कर सकते, दोनों उनके पास अदब से आते हैं और दारू पी कर करमा गाते हुए लौट जाते हैं, अब तो वर्तमान भी उनके पास अदब

से हाजिर होने लगा है, वे वर्तमान के प्रति अब काफी सचेत भी हैं, उनकी सचेतनता का परिणाम है **दरमा** गांव जहां वन प्रबंधन आदिवासियों की पारंपरिक जोत वाली भूमि पर वन अधिनियम के तहत कब्जा नहीं कर पाया, वे दरमा गांव में आज भी कृत संकल्पित हैं कि राजस्व भूमि नहीं बनने देंगे। सोनभद्र में राजस्व भूमि तथा वन भूमि का द्वन्द्व अब राजनीतिक द्वन्द्व बन चुका है। यहां के लोग समझने लगे हैं कि राजस्व भूमि को गैर कानूनी ढंग से वन विभाग को सौंप दिया गया है जो गलत है, आखिर वन विभाग राजस्व ग्रामों की सीमा के भीतर कैसे घुस सकता है। यह कानून बनाने वालों के लिए सोचने व गुनने की बात है।

आदिवासियों की सचेतनता का दूसरा उदाहरण है महत्वाकांक्षी कनहर बांध परियोजना, जिसका सचेतन व अहिंसक विरोध आदिवासी कर रहे हैं। कनहर बांध के निर्माण को रोकने के लिए वहां के आदिवासी जनतांत्रिक ढंग से बीस वर्षों से संघर्षरत हैं, यह सब किसी शिक्षण प्रशिक्षण से नहीं हो रहा यह उनके लोक विद्या की प्रेरणा से हो रहा, वे जान व मान चुके हैं कि वन उनका है तथा वे ही वन को बचा भी सकते हैं। अभी तक सरकार उस बांध को नहीं बना पाई है। आदिवासियों का मानना है कि बड़े बांध हमारी जमीन पर तो बनाए जाते हैं पर उनके इलाके को सिंचित नहीं किया जाता दूसरे इलाके को सिंचित किया जाता है, हमें उसका एक बूंद पानी नहीं मिलता फिर क्यों हम इस तरह का बांध बनने दें जिसका लाभ हमें नहीं मिलने वाला, इसलिए यह बांध नहीं बनने देंगे। आदिवासी रिहन्द बांध ही नहीं यहां के स्थापित कारखानों का भी हवाला देते हैं, हमें क्या मिला? घर बार हमें छोड़ना पड़ा लाभ मिला दूसरों को, हमें क्या मिला? हवा, जल, पहाड़, पानी सारा प्राकृतिक संसाधन हमारा और हमारे लिए रोजगार तथा दो जून का खाना तक नहीं, हालांकि अभी आदिवासी तथा दलितों में वह जागरूकता नहीं आ पाई है कि वे ललकार सकें जितनी संख्या भारी उतनी हिस्सेदारी फिर भी आशा की जा सकती है कि लोकतांत्रिक विरोध का पैमाना सोनभद्र में अब वह नहीं रहेगा जो आजादी के समय या जमीनदारी विनाश के समय था। हालांकि आदिवासी से जनजातिकरण के रास्ते पर चलते हुए आदिवासियों ने अपना बहुत कुछ खो दिया है उसकी भरपाई तो संभव नहीं पर अभी भी बहुत कुछ शेष है जिसे बचा लेना भी कम महत्त्व का नहीं होगा।

□□

अक्षर घर, हर्ष नगर,
पूरब मोहाल, रावर्ट्सगंज
सोनभद्र उ.प्र.231216
मो. 09451184771